उत्तररामचरितम् में चित्रकला के तत्त्व

डॉ. शशिकुमार सिंह*

सदियों से प्रकृति जहाँ जीवन के चिर सहचरी के रूप में जीवन में नवोन्मेष का संचार करती रही है वहीं जीवन भी प्रकृति को या तो अपने अनुकूल करने का यथेष्ट प्रयास करता रहा है अथवा स्वयं को प्रकृति के अनुकूल कर पाने के लिए सतत यत्नशील रहा है। सभ्यता के उषःकाल में ही आरम्भ हुए प्रकृति और जीवन के इस साहचर्य के परिणामस्वरूप मानव जीवन में सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ, जिसे लोक में कला के नाम से जाना गया। इस कला के द्वारा ही मानव जीवन को नई दिशाओं का निर्देश प्राप्त हुआ और मानव अपने अन्तर्मन के कोमल क्रोड़ में छिपी स्निग्ध भावनाओं की सहज एवं सुन्दर अभिव्यक्ति कर पाने में समर्थ हो सका।

संस्कृत साहित्य में भी कलाओं का प्रयोग प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। कला शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही दृष्टिगोचर होने लगता है। ऋग्वेद में कला शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है।

यथा कला, यथा शफ, मध, शृण स नियामति[1]

'नाट्यशास्त्र में आचार्य भरतमुनि ने कला के महत्त्व को स्वीकारते हुए कहा है–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला[2]

(ऐसा कोई ज्ञान नहीं, ऐसा कोई शिल्प नहीं, ऐसी कोई विद्या नहीं जो कला न हो)

संस्कृत साहित्य के महान् नाटककार महाकवि भवभूति ने भी उत्तररामचरित नाटक के मंगलाचरण में कला को नमन किया है।

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
वन्देमहि च तां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।[3]

'कला' शब्द की व्युत्पत्ति 'कल्' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है 'प्रेरित करना। कुछ विद्वान् इसकी व्युत्पत्ति 'कम्' धातु से मानते है– ''कं (सुखं) लाति इति कलम्, कम् आनन्दं लाति इति कला।''

इस प्रकार सुन्दर, मधुर, कोमल और सुखद शिल्प ही कला है। दूसरे शब्दों में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की अभिव्यक्ति को ही कला कहते हैं।

***सहायक प्राध्यापक–संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर, म.प्र.470003**

भारत में प्रागैतिहासिक युग से लेकर अब तक इन कलाओं का विकास विविध रूपों में होता आया है। विभिन्न ग्रन्थों में कला के अनेक प्रकारों की विधिवत् एवं शास्त्रीय चर्चा की गयी है। कहीं चौसठ (कामसूत्र, शुक्रनीतिसार) तो कहीं बहत्तर (प्रबंधकोश, वस्तुविज्ञानकोश) प्रकार की कलाएं बतायी गयी हैं।

कलाओं के इन विविध प्रकारों में महत्त्वपूर्ण प्रकार है चित्रकला। कामसूत्र में वात्स्यायन ने चित्रकला को 'आलेख्यम्' नाम से अभिहित किया है तो ललितविस्तरकार ने इसे 'रूपकर्म' कहा है। प्रबंधकोशकार इसे 'चित्रकर्म' कहकर पुकारा है तो शुक्रनीतिसार में 'हीनमध्यादिसंयोगवर्णाद्यैरञ्जनम्' कहकर इसे सम्बोधित किया गया है। वैसे तो सभी कलाएं मानव के अन्तस् के मर्मों को अभिव्यक्त करने में सहायक होती है परन्तु उन कलाओं में चित्रकला का स्थान अति विशिष्ट बताया गया है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के 'चित्रसूत्र' में चित्रकला का श्रेष्ठत्व रेखांकित करते हुए उसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला बताया गया है–

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मार्थकाममोक्षदम्।
मङ्गल्यं प्रथमं चैतद्गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।।[4]

चित्रकला दो शब्दों से मिलकर बना है– चित्र एवं कला। कला के सन्दर्भ में व्यापक चर्चा हो चुकी है। अब चित्र के सामान्य अर्थ पर विचार करते हैं। अमरकोशकार ने चित्र की परिभाषा देते हुए कहा है–

आलेख्येभित्यादौ नानावर्णलेखने आश्चर्ये च चित्रम्[5]
(अमरकोश 3/178)

अर्थात् दीवार आदि पर विभिन्न रंगों से लिखित आश्चर्यजनक कृति को चित्र कहा जाता है।

हलायुधकोशकार समसामयिक सन्दर्भो के साथ चित्र की परिभाषा करते हुए कहते है–

चित्रयते इति चित्रम्[6]

अर्थात् जिस चित्रित किया जाय वह चित्र है।

इस प्रकार यह आशय स्पष्ट होता है कि कलाकार के चित्त (अन्तःकरण) के द्वारा जिस सुन्दर कल्पना को अपने विषय के लिए 'चयनित' किया जाता है वह ही चित्र कहलाता है।

सृष्टि के प्राचीनतम वाङ्मय संस्कृत साहित्य में चित्रकला से सम्बन्धित उल्लेख प्रचुरमात्रा में प्राप्त होते रहे हैं। कालिदास हों या भास, सुबन्धु हों या भवभूति प्रायशः अधिकांश कवियों ने अपने ग्रन्थों में चित्रकला का सम्यक्, समीचीन और युक्तिपरक स्थान दिया है।

उत्तररामचरितम् तो संस्कृत साहित्य में चित्रकला के सुन्दर समावेशन का निदिर्शन भूत नाट्य ग्रन्थ माना जाता है। जिसमें चित्रकला के प्रयोग से की गयी चित्रवीथी की कल्पना ग्रन्थ की नाटकीयता को न सिर्फ परिपुष्ट करती है अपितु नाटक के सम्पूर्ण कथानक को एक दृढ़ आधार प्रदान करती है। कला के अनन्य उपासक, संस्कृत के सुधीसाहित्यकार श्रीकण्ठपदलाञ्छन महाकवि भवभूति की अप्रतिम रचना उत्तररामचरित आठवीं शताब्दी ईसवी में विरचित संस्कृत साहित्य का विलक्षण ग्रन्थ रत्न है। करूण रस को अंगीरंस के रूप में स्वीकार करने वाला यह नाटक कुल सात अंकों में विभक्त है। ग्रन्थ के मंगलाचरण में ही कवि भवभूति कला को नमस्कार कर कला विषयक अपनी श्रद्धा का परिचय देते ही हैं। परन्तु कलाओं में भी चित्रकला के प्रति कविवर भवभूति का अधिक अनुराग प्रतीत होता है क्योंकि ग्रन्थ के आदि अंक (चित्रदर्शन अंक) में महाकवि भवभूति ने चित्रों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग कर ही ग्रन्थयात्रा को प्रस्थान दिया है।

आसन्नप्रसवा सीता के मनोविनोदनार्थ रामानुज लक्ष्मण द्वारा चित्रवीथी का आयोजन किया गया है जिसमें मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्रीराम के पूर्वचरित की चित्रात्मक अभिव्यक्ति की गयी है। विश्वामित्र द्वारा श्रीराम को दिए गए जृम्भकास्त्रों के चित्रों से लेकर सीता की अग्निशुद्धि पर्यन्त तक के चित्रों की चर्चा उत्तर रामचरितम् के चित्रवीथी में की गयी है। इनमें कुछ चित्रों की विशेषताओं का शब्दशः स्पष्ट वर्णन किया गया है और कुछ चित्रों की सूचना मात्र दी गयी है।

प्रस्तुत शोधपत्र में उपर्युक्त चित्रों में चित्रकला के आवश्यक तत्त्वों को चिन्हित करने का प्रयास किया गया है। चित्रकला की सार्वभौमिक एवं कालजयी रूप रेखा वात्स्यायन के कामसूत्र की यशोधरा पण्डित द्वारा की गयी जयमंगला नामक टीका में प्राप्त होती है–

रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
सादृश्यं वर्णिकाभङ्ग इति चित्रं षडङ्गकम्।।[7]

अर्थात् चित्रकला के छः अंग होते है– रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य, सादृश्य एवं वर्णिका भंग। चित्र के ये छः अंग उसी प्रकार एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं जैसे मानव देह के निमित्त देह के प्रत्येक अंग।

चित्रकला के उपर्युक्त षडगों का विस्तृत परिचय देते हुये उत्तर रामचरित् के चित्रों में उनकी उपस्थिति को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है–

1. रूपभेद– रूपभेद से तात्पर्य है दृष्टि का ज्ञान। चित्रों के रूप का पृथक–पृथक साक्षात्कार। चक्षु द्वारा चित्र के बाह्य आकार को देखकर उस वस्तु में निहित व्यापक सौन्दर्य को आत्मा द्वारा ग्रहण किया जाना ही रूप भेद है। रूपभेद के द्वारा ही

चित्र के आकृति की पहचान होती है यथा माता के रूप में माता, छाया के रूप में छाया आदि।

उत्तररामचरित में विभिन्न चित्रों की स्पष्ट एवं पृथक् प्रतीति स्फुट रूप से होती है।

यथा– जृम्भकास्त्रो के चित्रों को देखकर लक्ष्मण की उक्ति–

देवि एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि[8]

मिथिलावृत्तान्त में विवाह संस्कार के अवसर पर पधारे हुए मुनि वशिष्ठ सहित राजा दशरथ का 'मुनि शतानन्द एवं राजा जनक द्वारा किए जाने वाले स्वागत वर्णन के प्रसंग में लक्ष्मण का कथन–

आर्ये पश्य पश्य।
सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः।।

सीता, माण्डवी, श्रुतकीर्ति आदि के चित्रों का पृथक्–पृथक् उल्लेख रूपभेद का उदाहरण है–

लक्ष्मणः– **इयमार्या। इयमार्या माण्डवी। इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः।**[10]

इसी प्रकार निम्नलिखित अन्य उदाहरणों में भी रूपभेद के रूपष्ट दर्शन होते हैं–

– एषा पञ्चवट्यां शूपर्णखा[11]
– तत्र भवतस्तात जटायु[12]
– अयमार्यो हनूमान[13]
– सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र, एतेन विनय माहात्म्येन[14]
– एषा मन्थरा[15]
– एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी[16]

इस प्रकार उत्तररामचरितम् के चित्रदर्शन अंक के चित्रों में चित्रकला के प्रथम आवश्यक तत्त्व रूपभेद के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

2. प्रमाण– प्रमाण से तात्पर्य है चित्रात्मक आकृतियों का लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि का सटीक ज्ञान। इसे सम्बद्धता का सिद्धान्त भी कहा जाता है। इसके द्वारा चित्र का मान (माप) निर्धारित किया जाता है इसी मान को प्रमा भी कहा जाता है प्रमा व्यक्ति के अन्तःकरण का ऐसा मापदण्ड होता है जिसके द्वारा सीमित एवं असीमित दोनों प्रकार की वस्तुओं को नापा जा सकता है। प्रमा के द्वारा ही मनुष्य, पशु, पक्षी आदि को एक दूसरे से पृथक् किया जाता है।

उत्तररामचरितम् नाटक के चित्रों में प्रमाण की प्रतीति यद्यपि लम्बाई, चौड़ाई आदि के प्रचलित इकाइयों इंच, सेंटीमीटर, मीटर आदि में तो नहीं होती

है वस्तु प्रकारान्तर से चित्रों के आकार के प्रमाण का ज्ञान अवश्य करा दिया जाता है यथा– जृम्भकास्त्र दर्शन के प्रसंग में जृम्भकास्त्रों को दिव्यास्त्र कहा जाता है।

रामः– **वन्दस्व देवि। दिव्यास्त्राणि।**[17]

दिव्यता भी प्रमाण की अवलोकन इकाई के रूप में अनुमन्य है। मिथिला में विवाह वर्णन के अवसर पर श्रीराम के द्वारा कहा जाना कि शतानन्द जी के द्वारा समर्पित कमनीय कंकण से शुशोभित तुम्हारे इस हाथ ने ऐ सीते; शरीरधारी महोत्सव के रूप में मुझे आनदित किया था–

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत् सुमुखि! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीय कङ्कण–
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः।[18]

यहाँ 'मूर्तिमान इव महोत्सव' भी प्रमाण के ही सूचक है।

हनुमान् के चित्र को देखकर राम की उक्ति–

'दिष्टया सौऽयं महाबाहुरञजनानन्दवर्धनः।[19]

यहाँ महाबाहु भी विशाल परिमाण को बोधक है। इस प्रकार उत्तररामचरितम् के चित्रों में प्रमाण तत्त्व के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

3. भाव – चित्रांकन परम्परा का तृतीय प्रधानतत्त्व है भावाभिव्यक्ति। यह संवेदनशील सृजन के लिए आवश्यक तत्त्व है। रूप की दृष्टि से प्रामाणिक होने के साथ–साथ चित्र में भावयुक्त सौन्दर्य भी होना चाहिए। भाव कहते हैं आकृति की भंगिमा को, उसके स्वभाव, मनोभाव एवं उसकी व्यंग्यात्मक प्रक्रिया को। भावाभिव्यञजना के दो रूप होते है– प्रकट और प्रच्छन्न। प्रकट भाव रूप को हम आंखों से प्रकट कर सकते हैं किन्तु उसके प्रच्छन्न स्वभाव को व्यञजना के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है।

उत्तररामचरितम् के चित्रों में भावों की अत्यंत सुन्दर अभिव्यञजना की गयी है। चित्रों में उपस्थित विपुल भावप्रवणता का ही परिणाम है कि वियोग के भय से सीता का अन्तःकरण भर आता है और राम को कहना पड़ता है कि–

'अयि विप्रयोगत्रस्ते। चित्रमेतत्। [20]

दक्षिणवन प्रदेश के समय सीता के द्वारा यह कहा जाना कि मैं प्रस्तुत चित्र में आर्यपुत्र द्वारा निजकर में ग्रहीत व्यजन रूपी छत्र से निवारण की गयी है धूप जिसमें ऐसा अपना दक्षिण वन में प्रवेश का उद्योग देखती हूँ–

सीता– प्रेक्षे तावरार्यपुत्रस्वहस्त धृततालवृन्तातपमात्मनो
दक्षिणारण्य प्रवेशारम्भम् [21]

यहाँ पर श्रीराम की व्यजन रूपी छत्र धारण की मुद्रा भाव का उदाहरण

है। इसी प्रकार मिथिला वृत्तान्त में आहलादक एवं सुन्दर शोभा वर्णन, पंचवटी वर्णन में शूपर्णखा के चित्र को देखकर सीता के द्वारा किया गया दुःख स्मरण, प्रस्रवण पर्वत की कन्दराओं में आस्फालित श्याम वर्ण जल ऊर्मियां आदि भाव के ही श्रेष्ठ निदर्शन है।

इस प्रकार भाव तत्त्व का कभी दर्शन उत्तरारामचरित चित्रों में उपलब्ध है।

4. लावण्य – लावण्य से तात्पर्य है रूप परिमिति। रूपभेद, प्रमाण और भाव की उपस्थिति के साथ–साथ चित्र में लावण्य की मौजूदगी भी परम आवश्यक है। जिस प्रकार भाव अन्तः सौन्दर्य का बोधन होता है उसी प्रकार लावण्य वाह्य सौन्दर्य का अभिव्यञजक होता है। चित्र में अलंकृति का समावेश लावण्य की योजना द्वारा ही संभव हो पाता है।

उत्तररामचरित के चित्रों में लावण्य भी दृष्टिगोचर होता है विवाह के अवसर वाले श्रीराम के चित्र को देखकर सीता की उक्ति–

अहो दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृण
शोभमांसलेन देहसोभाग्येन...[23]

यहाँ 'प्रस्फुटित नीलकमल के समान श्यामल, चिकने, मृदु, शोभायुक्त शरीर सौन्दर्य के कारण आश्चर्य से निश्चल तात' में लावण्य का मधुर संयोजन है।

इसी प्रकार प्रसवण पर्वत के चित्र में– निरन्तर मेघों से अत्यन्त स्निग्ध नीलिमा सम्पन्न जनस्थान मध्य भाग में अवस्थित प्रस्रवण नामक पर्वत–

सततमभिष्यन्दमानमेघ मेदुरितनीलिमा जनस्थान मध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।

यहाँ पर भी पर्वत के अतिशय सौन्दर्य वर्णन में लावण्य तत्त्व विद्यमान है। अन्य अवसरों पर भी लावण्य का सम्यक् समन्वय उत्तररामचरित के चित्रों में उपलब्ध होता है।

5. सादृश्य – किसी मूलवस्तु पदार्थ या भाव के साथ उसके प्रतिकृति की समानता को दर्शाने का नाम ही सादृश्य है। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार किसी रूप के भाव को किसी दूसरे रूप में प्रकट कर देना ही सादृश्य कहलाता है। सादृश्य को चित्रकर्म के प्रधान वस्तु के रूप में माना जाता है–

सादृश्यकरणं प्रधानं परिकीर्तितम् [24]

उत्तर रामचरित के चित्रों की यह विशेषता अविस्मरणीय है कि सभी अपने संदर्भों का सटीक उपस्थापन करने में पूर्ण समर्थ हैं। उनसे उसी प्रकार की प्रतीति राम एवं सीता को होती हुयी दिखाई देती है जैसी ये अपने पूर्व के जीवन में किए थे। सादृश्य की दृष्टि से उत्तररामचरित के चित्र अत्यन्त सटीक है।

उत्तररामचरित के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

–आर्यपुत्र आलिखितः[25]

सीता– अहो जानामि तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते[26]

शूपर्णखा के प्रति राम का कथन–

रामः– हन्त। वर्तमान इव में जनस्थान वृत्तान्तः प्रतिभाति।[27]

(खेद है! जनस्थान का वृत्तान्त वर्तमान सा प्रतीत होता है।)

इस प्रकार सादृश्य तत्त्व का दर्शन उत्तररामचरित में अनेक अवसरों पर प्रायः सहज ही होता रहता है।

6. वर्णिका भंग – नाना वर्णों की सम्मिलित भंगिमा को वर्णिका भंग कहते हैं। किस स्थान पर किस रंग का प्रयोग करना चाहिए तथा किस रंग के समीप किसका समायोजन होना चाहिए ये सभी बातें वर्णिका भंग द्वारा ही जानी जा सकती है। वर्णिका भंग के रंगों का सम्मिश्रण, उनके प्रयोग की तकनीक, तूलिका के प्रयोग आदि विविध का परिगणन होता है।

उत्तररामचरित के विविध चित्रों में भिन्न–भिन्न रंगों की चर्चा की गई है– गोदावरी के किनारों पर स्थित भूमि के रंग को नीलवर्ण कहा गया है–

''अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्य परिणद्धगोदावरी मुखरकन्दरः''[28]

श्वेत कमल एवं नीलकमल का वर्णन–

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्ष पक्ष व्याधूतस्फुरदुरूदण्डपुण्डरीकाः वाष्पाम्भः परिपतन्तो दृगमातराले सन्दृष्टा कुवलयिनो मया विभागाः[29]

अर्जुन पुष्पों से सुरभित माल्यवान् पर्वत के श्वेतवर्ण एवं मेघ वर्णन में श्याम (नील) वर्ण का उल्लेख प्राप्त होता है–

सोऽयं शैलः ककुभ सुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मिन्नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः आर्येणास्मिन्... ।[30]

इस प्रकार विभिन्न वर्णों का सुन्दर संयोजन होने से चित्रकला छठवाँ और अन्तिम तत्त्व भी उत्तररामचरित के चित्रों में दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार उत्तररामचरित के चित्रदर्शन अंक के प्रभावोत्पादक चित्रों में चित्रकला के मान्य छः प्रकार के तत्त्वों रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य, सादृश्य एवं वार्णिका अंग की उपस्थिति प्रायः दृष्टिगोचर होती है। उत्तररामचरित के चित्र के प्रयोग में दक्ष कविवर भवभूति एक कुशल नाटककार तो है ही वह एक श्रेष्ठ चित्रकार के रूप में वन्दनीय है। समादरणीय है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. ऋग्वेद
2. नाट्यशास्त्र 1/116
3. उत्तरामचरितम् 1/1
4. विष्णुधर्मोत्तर पुराण चित्रसूत्रम्
5. अमरकोश 3/178
6. हलायुद्ध कोश
7. यशोधरा पंडितकृत कामसूत्र की जयमंगल टीका
8. उत्तरामचरितम् की डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 28
9. उत्तरामचरितम् 1/16
10. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 32
11. उत्तरामचरितम् डॉ.रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 44
12. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 49
13. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 53
14. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 35
15. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 36
16. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 38
17. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 28
18. उत्तरामचरितम् 1/18 डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 28
19 उत्तरामचरितम् 1/32
20. उत्तरामचरितम् 1/32 डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 45
21. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 42
22. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 30
23. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 43
24. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्या पृष्ठ – 30
25. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्यान पृष्ठ – 32
26. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्यान पृष्ठ – 32
27. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्यान पृष्ठ – 46
28. उत्तरामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी कृत व्याख्यान पृष्ठ – 28
29. उत्तरामचरितम् 1/31
30. उत्तरामचरितम् 1/33